सार्त्र का अस्तित्ववाद एवं मानव

डॉ0 श्याम कान्त*

अस्तित्ववाद समकालीन पाश्चात्य दर्शन की एक महत्वपूर्ण विचारधारा है, जिसे प्रतिष्ठित करने में फ्रांसीसी दार्शनिक ज्याँ पाल सार्त्र का विशेष योगदान है। उन्हें यह भी श्रेय देना होगा कि उन्होंने अस्तित्ववाद के तात्विक एवं मूलगत सिद्धान्त को सुसम्बद्ध रूप से समझाने का प्रयास किया है। निःसंदेह वे अस्पष्ट और अपिरिचत शब्दावली का प्रयोग करते हैं, किन्तु उनके प्रतिपादन का ढंग ऐसा है कि उनका दर्शन सुगम हो जाता है। साथ ही सार्त्र ने अस्तित्ववाद का इतने जीवन्त और प्रभावशाली विधि से प्रतिपादन किया कि वह अत्यधिक लोकप्रिय बन गया तथा शिक्षित वर्ग इसके प्रति विशेष रूप से आकर्षित हुआ। सार्त्र अपने युग की फ्रांसीसी युवा पीढ़ी की अभिरूचि और वाद–विवाद का केन्द्र रहे हैं। यदि उनके कुछ प्रशंसक और भक्त हैं तो कुछ निन्दक एवं आलोचक भी हैं। सार्त्र की विचारधारा को उपेक्षणीय सिद्ध करने के लिए इन आलोचकों ने उन्हें 'कॉफी हाउस का चिन्तक' तथा उनके दर्शन को 'कैफे फिलॉसफी' भी कहा। किन्तु सार्त्र की विचारधारा की इस भाँति उपेक्षा करना सम्भव नहीं था। यदि किसी विचारधारा का चिन्तन पुष्ट हो, उसमें मनुष्य के लिए दृढ़ अवलम्ब हो अथवा वह जीवन को प्रतिबिम्बित करता हो तो वह चिन्तन के इतिहास में अक्षुण्ण रहेगी। यही कारण है कि सार्त्र के चिन्तन को पर्याप्त स्वीकृति प्राप्त हुई है। वस्तुतः सार्त्र फ्रांसीसी परम्परा के एक प्रखर बुद्धिजीवी हैं। वे दार्शनिक हैं, मनोवैज्ञानिक हैं, नाटककार तथा उपन्यासकार हैं। इन सभी विषयों पर उनका समान अधिकार है। उन्होंने जो कुछ लिखा है उसमें अर्थ और उद्देश्य की एकता है तथा उनका ''दर्शन'' उस एकता का सूत्र है।

सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन के प्रथम केन्द्रीय विचारों में मानव अस्तित्व प्राथमिकता के विवेचन का भाव है। दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में 'मानव', 'व्यक्ति' तथा 'पुरूष' जैसे शब्दों का प्रयोग कर मनुष्य की व्याख्या का भरपूर प्रयास किया गया है। किन्तु अस्तित्ववादी विचारधारा में इसे और सुनिश्चित रूप देने के क्रम में 'मानव–व्यक्ति' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'मानव–व्यक्ति' शब्द 'मानव' तथा 'व्यक्ति' दो शब्दों से बना हुआ है। यहाँ 'व्यक्ति' शब्द का अर्थ 'वैयक्तिक सत्ता' से है जो सप्राण आत्मा या आत्म–चेतन सत्ता का बोधक है। इसी प्रकार 'मानव' शब्द उस आत्म–चेतन सत्ता के गुणों का बोधक है जो स्वभाव रूप में उनमें निहित है। अतः 'मानव–व्यक्ति' वैयक्तिक सत्ता के सम्पूर्ण स्वभाव का संकेतक है जो

***असिस्टेण्ट प्रोफेसर दर्शनशास्त्र आर्य कन्या डिग्री कालेज प्रयागराज**

मनुष्य को समग्रता में उपस्थित करने में सक्षम है। सार्त्र ने मानव–व्यक्ति का जो स्वरूप निर्धारित किया है उसमें सार की अपेक्षा अस्तित्व की प्रधानता है। मनुष्य का सार या बुद्धिगम्य प्रकृति अस्तित्व से उत्पन्न होता है। अस्तित्व का साधारण–सा अर्थ है उपस्थित होना। उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है। सार या प्रकृति उसी पर आधारित है। अस्तित्व ही उसे यथार्थता प्रदान करता है। मनुष्य की प्रकृति एक रहस्य–सा है। इसलिये मनुष्य की प्रकृति और उसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता है।[1]

सार्त्र के अनुसार मानव–व्यक्ति का अस्तित्व संभावनाओं के कारण गतिशीलता और अपूर्णता एवं अधूरेपन को अपनाये हैं। मनुष्य तथा जगत् के सम्बन्ध को लेकर पारम्परिक दर्शन में दो विपरीत दृष्टिकोण पाये जाते हैं। एक दृष्टिकोण मनुष्य को भौतिक, सामाजिक तथा शारीरिक परिस्थितियों का परिणाम मानता है। यह दृष्टिकोण प्रकृतिवादी दृष्टिकोण है जिसे मुख्य रूप से प्राकृतिक विज्ञानों की मान्यता प्राप्त है। इसके अनुसार मानव जीवन पूर्णतया बाह्य कारणों द्वारा नियंत्रित है। इस प्रकृतिवादी दर्शन के विपरीत विज्ञानवाद में मनुष्य को वस्तु–योजना के केन्द्रीभूत सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मूल वास्तविकता भौतिक नहीं, अपितु आध्यात्मिक है। चेतना का आविर्भाव भौतिक सत्ता से नहीं हुआ है अपितु उसकी एक स्वतंत्र कोटि है, अन्ततः वही सत् है। चेतना से ही समस्त जगत् निर्मित है तथा जो कुछ चेतनेतर है, वह आभास है। इस प्रकार प्रकृतिवाद तथा विज्ञानवाद दोनों ही में या तो वास्तविक मानवीय अस्तित्व पर विचार ही नहीं किया गया है अथवा उसको विकृत एवं मिथ्या रूप में प्रस्तुत किया गया है। दर्शन की वास्तविक समस्या व्यक्ति के वास्तविक अस्तित्वगत प्रश्नों के सम्मुख खड़ा करना है। इस दृष्टि से प्रकृतिवाद और विज्ञानवाद दोनों ही असंतोषप्रद सिद्धान्त हैं। सार्त्र वास्तविक मानव अस्तित्व पर बल देते हैं। वास्तविक मानव अस्तित्व का तात्पर्य जगत् में स्थित मानव अस्तित्व से है। मनुष्य और जगत् का सम्बन्ध एक विषय और दूसरे विषय का सम्बन्ध नहीं है (प्रकृतिवाद) और न ही यह विषय और विषयी का सम्बन्ध है जिसमें विषय विषयी की रचना है (विज्ञानवाद), यह सम्बन्ध उस सत्ता का सम्बन्ध है जिसमें विषयी अपना शरीर है, अपना जगत् है तथा अपनी परिस्थिति है।[2] सार्त्र कें अनुसार चेतना तथा उसके विषय मूलतः अस्तित्व के ही दो रूप हैं किन्तु उनमें एकता या संगति नहीं, पूर्ण पार्थक्य है। ज्ञान के स्वरूप की व्याख्या करते हुए सार्त्र चेतन विषयी और चेतना के विषय के भेद पर प्रकाश डालते हैं। एक ओर चेतन विषयी है तथा दूसरी ओर विषय है। ज्ञान की दृष्टि से चेतन विषयी 'पोरसोई' है क्योंकि वह प्रत्येक चिन्तनशील आत्म–चेतना के प्रत्येक कर्म में अपने लिये अस्तित्व रखता है। यदि विषय को उन समस्त अर्थों, व्याख्याओं और संदर्भों से अलग कर दें जिनसे विषयी ने उसको युक्त किया है तो विषय एवं सत्ता

स्वयं में 'एसबर्ड' है, निराधार, निरर्थक प्रलाप है। विषयी और विषय में मूलगत ध्रुवता का कारण निषेध का तत्व है। यदि विषय और विषयी में पूर्ण पार्थक्य है तो ज्ञान अथवा कर्म संभव नहीं है, अथवा किसी भी प्रकार की परात्परता सम्भव नहीं है तो फिर क्या सत्ता एक ऐसा द्वैत है जो असमाधेय है, जिसके एक ओर परिपूर्णता है और दूसरी ओर कोरा निषेध? सार्त्र के दर्शन में ऐसी कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती क्योंकि उनके अनुसार जो कुछ भी है,, वह अस्तित्व है, सर्वत्र अस्तित्व ही है, हम स्वयं भी अस्तित्व हैं, न हमें जगत् की सत्ता सिद्ध करने की आवश्यकता है और न ज्ञान की प्रमाणिकता को सिद्ध करने की। ऐसे प्रयास निरर्थक होते हैं। मूलगत सत्य यह है कि अस्तित्व है, और दार्शनिक के रूप में हमारा कर्तव्य उसका अनुभव करना तथा उसकी सम्भावनाओं को स्पष्ट करना है।

सार्त्र के विचार का केन्द्र 'मानव–व्यक्तित्व है, अस्तित्व है तथा उसका प्रारम्भिक बिन्दु अस्तित्व की प्रथम चेतना है। यह चेतना कोई सार्वभौम चेतना नहीं, बल्कि हर व्यक्ति की अपनी चेतना है। इनके अनुसार मानव–अस्तित्व का अर्थ है– अस्तित्व की अनुभूति के साथ जीना। अतः स्वाभाविक रूप से इस प्रकार के विचार का ध्यान 'व्यक्ति' पर केन्द्रित है, क्योंकि इस प्रकार की 'सामान्य' अनुभूति सम्भव नहीं है। अस्तित्व की प्रथम अनुभूति के साथ ही व्यक्ति को यह अनुभूति भी होती है कि वह एक 'परिस्थिति' (सिचुएशन) में है। यह प्राथमिक अनुभूति होती है कि उसकी अपनी वैयक्तिकता का विकास भी उसकी 'वस्तुओं' की अनुभूति तथा उसकी 'अन्य की अनुभूति' से प्रभावित है। इस प्रकार उसके लिये अस्तित्व के तीन आयाम स्पष्ट होते हैं–वस्तु, वह स्वयं तथा अन्य। इन्हीं तीनों आयामों को ध्यान में रखते हुए सार्त्र मानव–व्यक्ति के अस्तित्व का विवेचन करते हैं।

सार्त्र के अस्तित्वाद का केन्द्र अस्तित्ववान् मानव है। उनका अस्तित्ववाद अस्तित्वान व्यक्ति की अनुभूतियों के माध्यम से मानव अस्तित्व की व्याख्या करता है। यह व्याख्या मानव की आत्मपरकता की व्याख्या है। उनके अनुसार मनुष्य पहले है, उसे आत्म अस्तित्व की चेतना पहले होती है। इस चेतना के बाद उसमें भाव बनने की क्षमता आती है और तब वह मानव–भाव भी बना लेता है। किन्तु किसी भी प्रकार के भाव के पहले प्राथमिक रूप में उसे अस्तित्व की ही चेतना होती है। मानव ही एकमात्र सत्ता है जो हर प्रकार के भाव, विचार आदि से पहले है। वही एक सत्ता है जिसे अस्तित्व की पहले अनुभूति है तथा उसके बाद ही, इसी अनुभूति के अनुरूप, वह अपने को जीवन की योजनाओं में लगाता है। इस प्रकार सब सार्त्र अस्तित्व को भाव से पहले कहते हैं तो उनका तात्पर्य है कि वे अस्तित्व की अनुभूति को प्राथमिकता प्रदान कर रहे हैं। आत्मपरकता में विकसित यह अनुभूति प्राथमिक और प्रारम्भिक बिन्दु है जिसे वे अपने अस्तित्ववादी मानव चित्रण का आधार बनाते हैं। उनके अनुसार आत्मपरक चिन्तन में ही, मानवीय अस्तित्व के उन पहलुओं का साक्षात्कार हो पाता है जो उसके अस्तित्व के अंग हैं।

सार्त्र के अनुसार आत्मपरक चिन्तन के फलस्वरूप मनुष्य के अन्तर में कुछ भावनात्मक स्व–वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं जो उसके जीवन, उसके अस्तित्व के अनिवार्य अंग के रूप में उभरती हैं। ऐसी स्ववृत्तियाँ, मनोदशाओं में कुत्सा (नासिया), असहायता या निरावलम्बता, नैराश्य, चिन्ता, परिताप, शून्यता[3], आत्म प्रवंचना[4] आदि हैं। सार्त्र के अनुसार ये सभी जीवन के वास्तविक तथ्य हैं जिनसे पलायन सम्भव नहीं है। ये सभी मानव अस्तित्व के अनिवार्य अंग हैं जिसकी अनुभूति आत्मपरकता में ही हो पाती है। मानव अस्तित्व में समाविष्ट इन सारे तथ्यों की अनुभूति मनुष्य की प्रामाणिकता, उसकी विशिष्ट मानवीयता के अनिवार्य उपकरण है। उनके दर्शन में ये अनुभूतियाँ नकारात्मक नहीं हैं क्योंकि इन्हीं अनुभूतियों के माध्यम से मानव का विशिष्ट मानवीय रूप निखरता है।

सार्त्र आत्मपरकता को मानव–व्यक्ति का सारतत्व मानते हैं। ये व्यक्ति को सच्चाई का सन्देश देते हैं। व्यक्ति को अपने यथार्थ में जीना चाहिये। उसे जो वह नहीं है, उसका दिखावा नहीं करना चाहिये। वर्तमान युग की औद्योगिक सभ्यता ने व्यक्ति को कृत्रिम यन्त्र बना डाला है। ऐसे व्यक्त्यों को सार्त्र सच्चाई के जीवन पर चलने को प्रेरित करते हैं। ऐसा जीवन वहीं व्यक्ति जी पाता है जो आत्मपरकता में अपने जीवन को पाता है, जो आत्मपरकता में जीता है। सत्य, शुभ और सौन्दर्य अनिवार्यतः प्रत्येक मानव अस्तित्व से सम्बन्धित है और अस्तित्ववान् व्यक्ति के अस्तित्व में ये मिले हुए हैं। अनिवार्य सत्य आत्मपरक है एवं सत्य आत्मपरकता में निहित है। वास्तविक अस्तित्व आत्मपरक, व्यक्तिगत एवं विषयीनिष्ठ है। अतः आत्मपरकता को प्राप्त करना सम्भावनाओं के क्षेत्र से वास्तविकता के क्षेत्र में वापस लौटना है।

अपने अस्तित्ववादी विचारों में सार्त्र आत्मपरकता को मानव–व्यक्ति का सारतत्व मानते हैं तथा स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व को आत्मपरकता का सार तत्व स्वीकार करते हैं। वस्तुतः आत्मपरकता में ही व्यक्ति को कुत्सा, असहायता, नैराश्य, शून्यता, आत्म–प्रवंचना, चिन्ता, परिताप इत्यादि जीवन के वास्तविक तथ्यों की अनुभूति होती है, जो अस्तित्व के अनिवार्य अंग हैं। इन सारी अनुभूतियों का मूल कारण मानव स्वतत्रंता और उसको बाधित करने वाले तत्वों के बीच का संघर्ष है। उदाहरण के लिये चिन्ता की दशा में मनुष्य को अपनी स्वतंत्रता की स्पष्ट चेतना होती है।[5] चिन्ता की अवस्था में व्यक्ति को अपने उत्तरदायित्व का बोध होता है। यह विचार कि मैं अपने व्यवहार, अपने मूल्यों के लिये बहानों की तलाश करता हूँ जिससे वह यह दिखा सके कि उसने जो कुछ किया, अन्य कारणों से किया, न कि स्वेच्छा से। वह अपनी स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व को सीमित करने वाले कारणों की खोज करता रहता है। अपने कार्यों के लिये कारणों के तलाश की यह प्रवृत्ति मनुष्य की दुरास्था है। दुरास्था का सहारा लेकर मनुष्य स्वतंत्रता तथा

उत्तरदायित्व से उत्पन्न चिन्ता तथा उस चिन्ताजन्य क्लेश से मुक्त होना चाहता है। इसके लिए वह बहानों की तलाश करता है। अपनी स्वतंत्रता को सीमित करने वाले कारणों की खोज करता है। बहानों की यह तलाश एक प्रकार की रक्षा प्रविधि है जिसे सार्त्र दुरास्था (बैड–फेथ) की संज्ञा देते हैं। सार्त्र के अनुसार मानव अस्तित्व की अनुभूति का अर्थ है मानव की मौलिक स्वतंत्रता की अनुभूति। मानव को अस्तित्व की प्रथम अनुभूति में ही अपने एकाकीपन की अनुभूति होती है। वह अपने को एक स्थिति में, वस्तुओं तथा अन्यों से घिरा पाता है तथा उसे यह भी भान होता है कि कोई अन्य सहारा नहीं है जिस पर वह झुक सके। अतः वह क्या बनेगा, किस दिशा में उसका अस्तित्व प्रवाहित होगा–यह सब उसी के निर्णय, निश्चय पर निर्भर करता है। यही स्वतंत्रता की प्राथमिक अनुभूति है। स्वतंत्रता विषयिता का लक्षण है, किन्तु उसकी संभावना विषयगत पर ही निर्भर करती है।[6] किन्तु स्वतंत्रता को, जो मानव अस्तित्व की प्राथमिक अनुभूति है दुरास्था के द्वारा बाधित किये जाने का प्रयास किया जाता है। सार्त्र के अनुसार मनुष्य का सारा जीवन दुरास्था पर आधारित जीवन है। धार्मिक व्यवहार आत्म–पलायन पर आधारित होता है। ईश्वर की धारणा मनुष्य की अतार्किक इच्छा है जिसके द्वारा वह वस्तुओं का स्थायित्व एवं असंदिग्धता तथा मनुष्य की स्वतंत्रता–दोनों को एक साथ प्राप्त करना चाहता है। वह मनुष्य उत्तरदायित्व से तो बचना चाहता है किन्तु स्वयं में सत्ता में श्रेष्ठ सत्ता भी प्राप्त करना चाहता है। वह चेतना वस्तु (इन इटसेल्फ–फॉर इटसेल्फ) होना चाहता है। किन्तु यह सर्वथा एक असंगत कल्पना है, मानवीय वास्तविकता के प्रतिकूल है। ऐसी इच्छा समस्त मानवीय सम्भावनाओं को समाप्त कर देती है। सार्त्र कहते हैं–ईश्वर की अस्वीकृति मानव–स्वातंत्रय एवं उत्तरदायित्व की स्वीकृति एवं उस स्वतंत्रता से उत्पन्न उत्तरदायित्व के भार से बचने का कल्पित उपाय दुरास्था है। यद्यपि सार्त्र यह मानते हैं कि अधिकांश मानव व्यवहार दुरास्था पर आधारित होता है, किन्तु उनका यह विश्वास नहीं है कि सदास्था (गुड फेथ) सम्भव नहीं है। उनका विश्वास है कि मनुष्य बिना भ्रान्तियों के भी रह सकता है। उसकी यह स्वीकृति कि केवल मनुष्य है–मानवीय सम्भावनाओं की स्वीकृति है। मनुष्य का मनुष्य के रूप में बोध उसकी स्वतंत्रता की खोज है। मनुष्य की यह स्वतंत्रता उसके भविष्य का उद्घाटन करती है जो केवल मनुष्य के द्वारा निर्मित एवं नियंत्रित है।

सार्त्र के अनुसार स्वतंत्रता के बाधक तत्व मनुष्य की स्वतंत्रता के प्रमाण हैं। वस्तुतः मनुष्य की स्वतंत्रता ही उसकी स्वतंत्रता की सीमाओं एवं बाधाओं को परिभाषित करती है। बाधा इसलिए बाधा होती है क्योंकि हमने ऐसा कुछ करने का निर्णय लिया है जिससे हम नहीं कर सकते। इस प्रकार मनुष्य की स्वतंत्रता ही बाधाओं को भी चुनाव करती है।[7] सार्त्र के अनुसार मानव–स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि वह अपनी स्थूल भौतिक परिस्थिति को परिवर्तित कर सकता है अथवा

अपनी सभी वांछित इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है। चुनाव की स्वतंत्रता उपलब्धि की स्वतंत्रता नहीं है। उपलब्धि भौतिक परिस्थितियों द्वारा परिसीमित होती है। हर परिस्थिति में चुनाव–स्वातंत्रय एक सा नहीं होता। स्वतंत्रता का महत्त्वपूर्ण परिणाम पूर्ण उत्तरदायित्व है। मेरा चुनाव केवल मेरा अपना है किसी अन्य द्वारा नियंत्रित नहीं हैं किन्तु मेरे चुनाव का सम्बन्ध केवल मुझसे नहीं है उसका सम्बन्ध सम्पूर्ण मानवता से है। अपने चुनावों द्वारा मैं मूल्यों की रचना करता हूँ जिसके लिये उत्तरदायित्व केवल मेरा है।[8]

स्वतंत्रता सार्त्र के चिन्तन का मुख्य बिन्दु है, क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व स्वतंत्रता के साथ अभिन्न है, यह उसकी संरचना मे निहित हैं। अतः मनुष्य की स्वतंत्रता परम है। मनुष्य और उसकी स्वतंत्रता में विशेष्य और विशेषण का सम्बन्ध नहीं है। मानव के सन्दर्भ में अस्तित्व और सार तत्व के भेद पर प्रकाश डालते हुए वे बतलाते हैं कि विषय जगत् की संज्ञाएँ अपने सार तत्व निर्धारित करती हैं अथवा उनका सार तत्व उनके अस्तित्व से पहले है। परन्तु मानव या मूर्त्त मानव वयक्तित्व का अस्तित्व उसके सारतत्व से पहले है अर्थात् मानव कुछ भी होने के लिए स्वतंत्र है। उसकी स्वतंत्रता ही उसका लक्षण है। इस कारण स्वतंत्रता उसका गुण या सार तत्व नहीं है, यह उसका अस्तित्व है।

सार्त्र की स्वतंत्रता की अवधारण के सम्बन्ध में एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठ सकता है कि क्या यह इच्छा की स्वतंत्रता है? वास्तव में सार्त्र इच्छा की स्वतंत्रता से स्वतंत्रता की धारणा को युक्त नहीं करते हैं। वे स्वतंत्रता को तथ्यात्मकता एवं परिस्थिति के आधार पर समझाते हैं। यदि तथ्यात्मकता न हो तो स्वतंत्रता या मानव कुम्हला जाएगा। मनुष्य की स्थिति, उसका विगत, उसका परिवेश, साथी, मृत्यु यह सब मनुष्य की तथ्यात्मकता को निर्धारित करते हैं। यही परिस्थिति मनुष्य की स्वतंत्रता को संभाव्यता प्रदान करती है। अथवा परिस्थिति वह है जिसमे स्वतंत्रता जन्म लेती है, पनपती है। इसलिए तथ्यात्मकता स्वतंत्रता को समाप्त नहीं करती है, वरन् उसे प्रश्रय देती है। स्वतंत्रता उच्छृंखलता का पर्यायवाची भी नहीं है क्योंकि यह दायित्व से युक्त है। स्वतंत्र होने के कारण मैं अपने सभी कर्मों के लिये उत्तरदायी हूँ।[9] स्वतंत्रता का मेरे चाहने या न चाहने से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं स्वतंत्र हूँ ही, क्योंकि मानव की स्वतंत्रता और उसकी सत्ता एक ही है–स्वतंत्रता मानव सत्ता की अनिवार्यता है।

सार्त्र द्वारा समर्थित–व्यक्ति की अवधारणा इसी मानव स्वतंत्रता के चरम उत्कर्ष को प्रतिबिम्बित करती है। यह मानव व्यक्तित्व और मानव स्वतंत्रता के उत्स का परिचायक है। मानव व्यक्तित्व वैयक्तिक सत्ता के सम्पूर्ण स्वभाव का संकेतक है जो मनुष्य को समग्रता में उपस्थित करने में सक्षम है। वस्तुतः मानव व्यक्तित्व की अवधारण अस्तित्ववाद का केन्द्रस्थल कहा जा सकता है। प्रायः सभी अस्तित्ववादी

चिन्तकों ने अपने दर्शन में मानव व्यक्तित्व को ही अपने चिन्तन का केन्द्रबिन्दु बनाया है। किर्केगार्ड के चिन्तन से प्रारम्भ होकर मानव व्यक्तित्व की अवधारणा सार्त्र के अस्तित्ववाद में अपने चरम पराकाष्ठा में दिखायी पड़ती है। व्यक्ति को सार्त्र अपने लिए सत् कहते हैं तथा वस्तु को अपने में सत्। वे मनुष्य को इतना अधिक महत्त्व देते हैं कि मानव से परे सत्ता को ये अस्तित्ववादी दर्शन का विषय ही नहीं मानते हैं। उनके अनुसार हर सत् और मानव–व्यवहार में मनुष्य की आत्मनिष्ठता और मानव–व्यवहार दोनों सम्मिलित हैं। उनका मुख्य उद्देश्य आधुनिक युग में व्याप्त मानव व्यक्तित्व को तुच्छ समझने की प्रवृत्ति का विरोध करना है। इन्होंने स्पष्टतः यह देखा कि तर्कणावादी विचारकों ने मानव व्यक्तित्व के महत्व को अस्वीकार किया है। उनकी बौद्धिक क्रियाएँ, उनकी क्षमताएँ, उनकी इच्छायें तथा उनके अन्तर्सूझों को महत्वहीन माना है। ऐसे विचार के विरोध में मानव व्यक्तित्व के अस्तित्व पर जोर देकर सार्त्र मानव–स्वतंत्रता को नये अर्थ में निरूपित करते हैं। इन्होंने मानव व्यक्तित्व को मानवीय परिस्थिति, जिसे हम जगत् की संज्ञा देते हैं के बीच आँकने का प्रयास किया है जिसकी गोद में मानव व्यक्तित्व जन्म लेता है, समृद्ध होता है तथा विकसित होता रहता है।

सार्त्र के अनुसार अस्तित्व का अर्थ 'संसार में मानव व्यक्तित्व' या सत्ता ही है। मनुष्य और संसार के संयोग से ही अस्तित्ववाद की चिन्तन प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। चेतना को एक संसार की सामान्य रूप से आवश्यकता होने के कारण मनुष्य आवश्यक रूप से संसार से आवृत है। उनके अनुसार चेतना चाहे जितनी शुद्ध और स्वतंत्र हो, वह अचेतन सत् के गर्भ से इस प्रकार उत्पन्न होती है जो बुद्धिगम्य नहीं है। चेतना उत्पन्न होकर सत् की सतह पर एक संसार की रचना करती है। मानव चेतना ही अर्थों का उत्प्रेक्षक होता है जिससे संसार की व्यवस्था का निर्देश मिलता है। सार्त्र के लिए एक सर्वमान्य संसार की व्याख्या करना कठिन है। उनके अनुसार मानव की व्यक्तिगत सत्ता है, इसलिए चेतना के व्यक्तिगत केन्द्र हैं। सार के अस्तित्व को महत्त्वपूर्ण मानते हुए सार्त्र का कहना है कि अस्तित्व ही गुण का कारण है, इसीलिए मनुष्य एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। वह जो कुछ भी है अपनी कृति है। सार्त्र के मानव व्यक्तित्व की अवधारणा भी उनकी अन्य मान्यताओं की तरह उनके अनीश्वरवादी पृष्ठभूमि में विकसित हुई है। वे कहते हैं कि मनुष्य स्वतंत्र होने के लिये अभिशप्त है। वह निर्मित नहीं है, प्रत्युत् वह स्वयं का निर्माण करता है। अतः मनुष्य को समझने के लिए हमें स्वतंत्रता से प्रारम्भ करना होगा। सार्त्र किसी विश्वव्यापी नैतिक नियम और निरपेक्ष तथा निश्चित मूल्यों को स्वीकार नहीं करते। यह मनुष्य पर ही निर्भर करता है कि वह स्वयं अपने आदर्शों एवं मूल्यों का चयन करें। अतः सार्त्र के मानव–स्वतंत्रता के विचार में ही मानव व्यक्तित्व का स्वरूप स्पष्ट होता है। उनके अनुसार मानव व्यक्तित्व वह है जिसमें

संकल्प और स्वातंत्रय के साथ विवेक भी हो। अपने सारे कार्यों के लिए, वैसे कार्यों के लिए भी जो वासना या भावना पर आधारित हैं, मनुष्य स्वयं ही उत्तरदायी है। इस प्रकार सार्त्र के दर्शन में स्वतंत्रता तथा स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय एवं चयन का अत्यधिक महत्व है। उनके दर्शन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष मानव व्यक्तित्व की अवधारणा उनके मानव–स्वातंत्रय के विचार में ही निहित है। उनके अनुसार वही व्यक्ति मानव कहलाने का अधिकारी है जो अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग निर्णय लेने के क्रम में करता है तथा अपनी स्वतंत्रता की सहज अभिव्यक्ति कर पाता है। इस प्रकार सार्त्र द्वारा समर्थित मानव व्यक्तित्व की अवधारणा वैसे स्वतंत्र मानव का विचार है जो इस जगत् में अपने मूल्यों का सृष्टिकर्ता है। उनके जीवन सम्भावनाओं से भरे हुए हैं। अतः ऐसा मानव व्यक्तित्व वातावरण में, परिस्थिति में अपनी रचना स्वयं करता है जहाँ वह अनेक मनुष्यों के बीच 'एक' मनुष्य है।

आज मानव सभ्यता एक क्रांतिकारी दौर से गुजर रही है। वैज्ञानिक प्रगति के कारण विज्ञान की शक्ति का विस्फोट स्वयं मानव की शक्ति से परे हो गया है। किन्तु आज की प्रगति किसी संस्कृति का बोधक नहीं, बल्कि आर्थिक बर्बरता बन गई है जिसका आदर्श सुसंस्कृत, चिन्तनशील मानव नहीं, बल्कि एक शक्ति–सम्पन्न मानव है जिसका लक्ष्य उन्मुक्त इच्छाओं की संतुष्टि और असीमित सम्पत्ति संग्रह है। आज की वैज्ञानिक प्रगति ने एक ऐसे आर्थिक मानव को जन्म दिया है। जिसके लिए भौतिक सुखों के अतिरिक्त सब कुछ गौण है। अतः आज के मनुष्य पर आसन्न दिशाहीनता के इस संकट को दूर करने के लिये सार्त्र का मानव व्यक्तित्व एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकता है। आज विश्व के समस्त मानवों को मानव व्यक्तित्व के आदर्शों को आत्मसात् कर स्वयं मानव–व्यक्ति बन जाने की अपरिहार्य आवश्यकता है। इसी स्थिति में मानव, मानवता एवं विश्व–जीवन का मार्ग सफलतापूर्वक प्रशस्त हो सकता है। हालाँकि उपर्युक्त आदर्श सदिच्छा मात्र भी हो सकता है क्योंकि अस्तित्ववादी स्थिति के लिए मानव व्यक्ति होना अपरिहार्य है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दी इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, खण्ड–10, पृ. 639.
2. पॉल रॉबिकजेक, एक्जिसटेंसियलिज्म फॉर एण्ड एगेन्स्ट, पृ. 10.
3. जे. सी. मिद्रालिच, एक्जिसटेंसियलिज्म एण्ड फिलासॉफी, पृ. 2.
4. फर्नान्डो मोलिन्स, एक्जिसटेंसियलिज्म ऐज फिलासॉफी, पृ. 2
5. डेविड ई. राबर्ट, एक्जिसटेंसियलिज्म एण्ड रिलिजियस बिलीफ, पृ. 4.
6. पॉल रॉबिजेक, एक्जिसटेंसियलिज्म फॉर एण्ड एगेन्स्ट, पृ. 10.
7. मार्ल पोन्टी, फ्रॉम रैसनलिज्म टु एक्जिसटेंसियलिज्म, पृ. 249.
8. ज्यॉ–पाल सार्त्र, एक्जिसटेंसियलिज्म एण्ड ह्यूमेन इमोसन्स, पृ. 33
9. वही, पृ. 17–18.